भारतीय दर्शनमें आत्मवाद

साध्वी निर्मलाश्री

मानव स्वभाव चिन्तनशील है। वह कुछ न कुछ चिन्तन करता रहता है, इसलिये दर्शनका क्षेत्र 'सत्यका अन्वेषण' होना चाहिये। भगवान् महावीरके शब्दोंमें 'सत्य ही लोकमें सारभूत है'।[1]

दर्शन शब्दका प्रयोग सबसे पहले 'आत्मासे सम्बन्ध रखनेवाला विचार'के अर्थमें हुआ है। दर्शन अर्थात् वह तत्त्वज्ञान जो आत्मा, कर्म, परलोक, मोक्ष आदिका विचार करें।

'तात्त्विक विचार-पद्धति' या 'तत्त्वज्ञान'को भी दर्शन कहा जाता है।[2] जिस पद्धति या वस्तुको लेकर तर्कपूर्ण विचार किया जाय उसीका वह (विचार) दर्शन बन जाता है—जैसे आत्मदर्शन आदि। सबसे प्रमुख तत्त्व आत्मा है—'जो आत्माको जान लेता है वह सबको जान लेता है।'[3]

अनेक व्यक्ति यह नहीं जानते कि 'मैं कौन हूँ?' 'कहाँसे आया हूँ?' 'कहाँ जाऊँगा?' 'मेरा पुनर्जन्म होगा कि नहीं?'[4], दर्शनका जन्म इस तरहकी जिज्ञासासे होता है। इस विचारपद्धतिकी नींव आत्मा है। यदि आत्मा है तो वह विचार है, यदि आत्मा नहीं है तो वह भी नहीं। अतः आत्माके विषयमें दार्शनिकोंका मन्तव्य जानना आवश्यक हो जाता है।

चार्वाक दर्शनके अनुसार—प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। अतः स्वर्ग, नरक, आत्मा, परलोक आदि नहीं है। यह लोक इतना ही है जितना दृष्टिगोचर होता है। जड़ जगत् पृथिवी आदि चार प्रकारके भौतिक तत्त्वों से बना हुआ है। जैसे पान, चूना और कत्थेमें अलग अलग ललाई दीख नहीं पडती, पर इनके संयोग होनेसे ललाईकी उत्पत्ति हो जाती है और मादक द्रव्योंके संयोगसे मदिरामें मादकताका

---

१ सच्चं लोगम्मि सारभूयं—प्रश्नव्या० २ संवरद्वार। सच्चम्मि धिइं कुव्वहा—आचा० १। ३।३।१११।

२ न्या० सू०-१-१-१, वै० द० १।१।१।

३ आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति—बृह० उप० २-४-६। जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ—आचा०

४ इह मेगेसिं नो सन्ना होइ, कम्हाओ दिसाओ वा आगओ अहमंसि? अत्थि मे आया उववाइए वा नत्थि? केवा—अहमंसि? के वा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि।—आचा० १।१।

आविर्भाव होता है, वैसे ही पृथिवी आदि चारों भूत जब देहरूपमें परिणत होते हैं तब उस परिणाम विशेषसे उसमें चैतन्य उत्पन्न हो जाता है।[१] उस चैतन्य विशिष्ट देहको जीव कहा जाता है।[२] 'मैं स्थूल हूँ', 'मैं कृश हूँ', 'मैं प्रसन्न हूँ' आदि अनुभवोंका ज्ञान हमें चैतन्ययुक्त शरीरमें होता है, भूतोंके नाश होने पर उसका भी नाश हो जाता है।[३] अतः चैतन्यविशिष्ट शरीर ही कर्ता तथा भोक्ता है, उससे भिन्न आत्माके अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं है। शरीर अनेक हैं अतः उपलक्षणसे जीव भी अनेक हैं, देहके साथ उत्पत्ति और विनाश स्वीकारनेसे वह देहाकार और अनित्य है। चार्वाकका एकदेश कोई इन्द्रियको, कोई प्राणको और कोई मनको भी आत्मा मानते हैं।[४] कोई चैतन्यको ज्ञान और देहको जड़ मानते हैं। उनके मतमें आत्मा, ज्ञान-जड़ात्मक है।[५]

बौद्धदर्शनके अनुसार—आत्मासे किसी स्थायी द्रव्यका बोध नहीं होता है किन्तु विज्ञान-प्रवाहका बोध होता है[६], विज्ञानगुणरूप होनेके कारण उसका कोई परिणाम नहीं है। बुद्धको उपनिषद् प्रतिपादित आत्माके रहस्यको समझाना प्रधान विषय था। सकल दुष्कर्मोंके मूलमें इसी आत्मवादको कारण मानकर उन्होंने आत्मा जैसे एक पृथक् पदार्थकी सत्ताको ही अस्वीकार किया है।[७] मोक्षकी साधनाके विषयमें प्रायः बुद्धदेवका उपनिषदोंसे कोई मतभेद नहीं दीखता। किन्तु आत्माको लेकर बुद्ध और उपनिषत्कारोंमें जो भेद है, उसे हम इस प्रकारसे रख सकते हैं कि जहां उपनिषदें यह मानती हैं कि मोक्ष आत्मज्ञानसे होता है, वहां बुद्धदेवका यह विचार है कि आत्माका ज्ञान मोक्ष नहीं, जीवके बन्धनका कारण है।... आत्माका अस्तित्व है, तबतक हम 'मैं और मेरा'के बन्धनसे छूट नहीं सकते[८]। विज्ञानोंके प्रवाहरूप आत्मा प्रतिक्षण नष्ट होनेके कारण अनित्य है। पूर्व-पूर्व विज्ञान उत्तरोत्तर विज्ञानमें कारणरूप होनेसे मानसिक अनुभव और स्मरणादिक की असिद्धि नहीं है। बौद्ध अनात्मवादी होते हुए भी कर्म, पुनर्जन्म और मोक्षको स्वीकार करते हैं। डोक्टर फरकोहरका मत है कि 'बुद्धदेव पुनर्जन्मको मानते थे किन्तु आत्माके अस्तित्वमें उनका विश्वास नहीं था'।[९]

यदि बुद्ध आत्माकी नित्यताको नहीं मानते थे तो पुनर्जन्ममें उनका विश्वास कैसे हो सकता था? बचपन, युवा और वृद्धावस्थामें एक ही व्यक्तिका अस्तित्व कैसे हो सकता है?

प्रतीत्यसमुत्पाद और परिवर्तनवादके कारण नित्य आत्माका अस्तित्व अस्वीकार करते हुए भी बुद्ध यह स्वीकार करते थे कि जीवन विभिन्न अवस्थाओंका एक प्रवाह या संतान है। जीवनकी विभिन्न अवस्थाओंमें पूर्वापर कार्य-कारण सम्बन्ध रहता है इसलिये संपूर्ण जीवन एकमय ज्ञात होता है। जैसे दीपकज्योत; वह प्रतिक्षण भिन्न होनेपर भी अविच्छिन्न ज्ञात होती है।

---

१ किण्वादिभ्यो मदशक्तिवच्चैतन्यमुपजायते।—सर्व० द० संग्रह. पृ० २।

२ चैतन्यविशिष्टदेह एवात्मा।—सर्व० द० संग्रह. पृ० ३।

३ विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति।—बृ० २।४।१२।

४ चार्वाकैकदेशिन एव केचिदिन्द्रियाण्येवात्मा, अन्ये च प्राण एवात्मा, अपरे च मन एवात्मेति मन्यन्ते।—सर्व० द० संग्रह. पृ० ५६।

५ चैतन्यविशिष्टे देहे च चैतन्यांशो बोधरूपः देहांशश्च जडरूप इत्येतन्मते जडबोधैतदुभयरूपो जीवो भवति।—सर्व० द० संग्रह. पृ० ५६।

६ विज्ञानस्वरूपो जीवात्मा।—सर्व० द० सं० पृ० ५७।

७ दीर्घ० नि० पृ० ११३-११५। भारतीय दर्शन। बलदेव। उपाध्याय पृ० १८५।

८-९ संस्कृतिके चार अध्याय। दिनकरजी। पृ० १३५-१३६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्माके विषयमें पूछनेपर बुद्ध कहते थे कि 'यदि मैं कहूँ आत्मा है तो लोग शाश्वतवादी बन जाते हैं, यदि यह कहूँ कि आत्मा नहीं है तो लोग उच्छेदवादी हो जाते हैं।[1] बुद्ध मध्यमार्गके व्याख्याता थे।

डोक्टर आनन्द कुमार स्वामीका यह भी कहना है कि, सारे बौद्ध साहित्यमें कहीं भी यह उल्लेख नहीं मिलता कि आत्मा[2] नहीं है अथवा जो शरीर रोगी, वृद्ध या मृत बन जाता है उससे अलग मनुष्यमें कोई शक्ति नहीं होती....."[3]

राहुलजीने इस विषयकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि, "बुद्धके समयमें आत्माके स्वरूपके विषयमें दो मत प्रचलित थे। एक तो यह कि आत्मा शरीरमें बसनेवाली, पर उससे भिन्न एक शक्ति है, जिनके रहनेसे शरीर जीवित रहता है और जिसके चले जानेसे वह शव हो जाता है। दूसरा मत यह था कि आत्मा शरीरसे भिन्न कोई कूटस्थ वस्तु नहीं है। शरीरमें ही रसोंके योगसे आत्मा नामक शक्ति पैदा होती है, जो शरीरको जीवित रखती है। रसोंमें कमी-बेशी होनेसे इस शक्तिका लोप हो जाता है जिससे शरीर जीवित नहीं रह पाता। बुद्धदेवने अन्यत्रकी भाँति यहां भी बीचकी राह पकड़ी और यह कहा कि आत्मा न तो सनातन और कूटस्थ है न वह शरीरके रसों पर ही बिलकुल अवलम्बित रहती है और न वह शरीरसे बिलकुल भिन्न ही है। वह, असलमें स्कन्धों भूत (Matter) और मन(Mind)के योगसे उत्पन्न एक शक्ति है, जो अन्य बाह्य भूतोंकी भांति क्षण-क्षण उत्पन्न और विलीन होती रहती है। उन्होंने न तो भौतिकवादियोंके उच्छेदवादको स्वीकार किया, न उपनिषदवादियों-के शाश्वतवादको। असलमें, आत्माके विषयमें उनका मत अशाश्वतानुच्छेदवादका पर्याय था।"[4] माध्यमिक बौद्धोंके अनुसार व्यवहारदशामें जीवात्मा प्रतिभासित होता है किन्तु उसका मूल स्वरूप शून्य ही है।[5]

न्याय-वैशेषिकदर्शनके अनुसार—जीवात्मा कूटस्थनित्य और विभु है। वह अनेक है। बुद्धि या ज्ञान, सुख-दुःख, राग-द्वेष, इच्छा, प्रयत्न आदि गुण उसमें रहते हैं। ये जड़ जगतके गुण नहीं है अतः हमे मानना ही पडता है कि ये एक ऐसे द्रव्यके गुण हैं जो जड़ द्रव्योंसे भिन्न है, जिसे आत्मा कहतें है। महर्षि कणादने 'प्राणापान, निमेषोन्मेष, जीवन, मनोगति, इन्द्रियान्तर, आदि आत्माके लिङ्ग बतलाये हैं।[6] 'इंद्रिय और शरीर आदिका नियन्त्रण करनेवाला आत्मा है। जो करण होता है वह कर्ताकी अपेक्षा रखता है'।[7] इनका मत वस्तुवादी है। वैशेषिक सुखदुःख आदिकी समानताकी दृष्टिसे आत्माकी एकता मानते है[8] और व्यवस्थाकी दृष्टिसे आत्माकी प्रति शरीर भिन्नता मानते हैं।[9]

---

१ अस्तीति शाश्वतग्राही, नास्तीत्युच्छेददर्शनम्। तस्मादस्तित्व-नास्तित्वे, नाश्रीयेत विचक्षणः॥ मा० का० १८।१०

२ आत्मेत्यपि प्रज्ञापितमनात्मेत्यपि देशितम्। बुद्धैर्नात्मा न चानात्मा, कश्चिदित्यपि देशितम्॥ मा० का० १९।६ जैनदर्शनके मौलिकतत्त्व।—पृ० ३९२।

३ संस्कृतिके चार अध्याय, दिनकरजी, पृ० १३९।

४ संस्कृतिके चार अ०, पृ० १३९।

५ सर्व० द० सं०, पृ० ३६।

६ प्राणापाननिमेषोन्मेष ..... आत्मलिङ्गानि।—वैशेषिक सू० ३।२।४।

७ आत्मेन्द्रियाद्यधिष्ठाता करणं हि सकर्तृकम्।—मुक्तावली का० ४७।

८ सुख-दुःख-ज्ञान-निरूपत्वविशेषादैकात्म्यम्। वै० सू० ३।२।१९।

९ व्यवस्थातो नाना। वै० सू० ३।२।२०। जीवस्तु प्रतिशरीरं भिन्नः—तर्कसंग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांख्यदर्शनके अनुसार—द्विविध मूलतत्त्व है प्रकृति और पुरुष (आत्मा)। प्रकृति जडात्मिका एक है, परन्तु पुरुष चेतन तथा अनेक है। सांख्य आत्माको नित्य और निष्क्रिय मानते हैं। इसी बातको आचार्य श्री हेमचंद्रजीने 'स्याद्वादमञ्जरी' में निर्देश किया है कि कापिलदर्शनानुसार आत्मा (पुरुष) "अमूर्त[1] चेतन, भोक्ता, नित्य, सर्वव्यापी, क्रियारहित, अकर्ता, निर्गुण और सूक्ष्म" है। सांख्य जीवको कर्ता नहीं मानते, किन्तु प्रातिभाषिक कर्ता और फलभोक्ता मानते हैं।[2] उनके मतानुसार कर्तृत्वशक्ति प्रकृतिमें हैं।[3] 'मैं हूँ', 'यह मेरा है' इस प्रतीतिके द्वारा आत्माका अस्तित्व निर्विवाद सिद्ध है। बुद्धिमें चेतनाशक्तिके प्रतिबिंब पड़नेसे आत्मा (पुरुष) अपनेको अभिन्न समझता है, अतः आत्मामें मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, ऐसा ज्ञान होता है। वादमहार्णवमें भी कहा हैं: "दर्पणके समान बुद्धिमें पड़नेवाला पदार्थोंका प्रतिबिंब पुरुषरूपी दर्पणमें प्रतिबिंबित होता है। बुद्धिके प्रतिबिंबका पुरुषमें झलकना ही पुरुषका भोग है, इसीसे पुरुषको भोक्ता कहते हैं। इससे आत्मामें कोई विकार नही आता"[4] इसी तरह पतञ्जलि, आसुरि और विन्ध्यवासीने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं।

मीमांसादर्शनके अनुसार—आत्मा कर्ता तथा भोक्ता है। वह व्यापक और प्रतिशरीरमें भिन्न है। ज्ञान, सुख, दुःख तथा इच्छादि गुण उसमें समवाय सम्बन्धसे रहते हैं। आत्मा ज्ञानसुखादिरूप नही है। भाट्ट मीमांसक आत्माको अंशभेदसे ज्ञानस्वरूप और अंशभेदसे जड़ स्वरूप मानता हैं, उनके मतानुसार आत्मा बोध–अबोधरूप है।[5] भाट्ट आत्मामें क्रियाके अस्तित्वको मानते हैं, उनके मतानुसार परिणामशील होनेपर भी आत्मा नित्य पदार्थ है। आत्मा चिदंशसे प्रत्येक ज्ञानको प्राप्त करता है और अचिदंशसे वह परिणाम को प्राप्त करता है।[6] कुमारिल आत्माको चैतन्यस्वरूप नहीं किंतु चैतन्यविशिष्ट मानते हैं। शरीर तथा विषयसे संयोग होनेपर आत्मामें चैतन्यका उदय होता है, पर स्वप्नावस्थामें विषयसे संपर्क न होनेके कारण आत्मामें चैतन्य नहीं रहता। प्रभाकर आत्मामें क्रियावत्ता नहीं मानते। भाट्ट मतानुसार आत्मा-पर विचार करनेपर आत्मबोध होता है। 'मैं हूँ' इसे 'अहंवित्ति' (self-Consciousness) कहते हैं। इसीका विषय (Object) जो पदार्थ होता है वह आत्मा है। प्रभाकर इस मतको नहीं मानता। उसका कथन है कि 'अहंवित्ति' की धारणा ही अयुक्त है। क्योंकि एक ही आत्मा ज्ञाता और ज्ञेय दोनों एक साथ नहीं हो सकता।[7]

वेदान्तदर्शनके अनुसार—शंकरका मत विशुद्ध अद्वैतवादका है। उनके मतानुसार स्वभावतः जीव एक और विभु है, परंतु देहादि उपाधियोंके कारण नाना प्रतीत होता है। एक विषयका दूसरे विषयके साथ भेद, ज्ञात और ज्ञेयका भेद, जीव और ईश्वरका भेद ये सब मायाकी सृष्टि है। उपनिषदोंमें प्रतिपादित

---

१ अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः। अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्मः, आत्मा कापिलदर्शने। स्या० मं० पृ० १८६।

२ प्रकृतेरेव वस्तुतः कर्तृत्वम् तच्च प्रकृतिसम्बन्धाज्जीवात्मनि प्रतिभासः, अतस्तत्प्रातिभासिकमिति सांख्याः पातञ्जलाश्च वदन्ति भोक्तृत्वमप्येवमेव। स० द० संग्रह. पृ० ५८।

३ सांख्यकारिका, ६२।

४ स्याद्वादमञ्जरी—पृ० १८६।

५ भाट्ट। आत्मानमंशभेदेन ज्ञानस्वरूपं जडस्वरूपं चेच्छन्ति। तेषां मत आत्मा बोधाबोधरूप इति–पञ्चदशी — चित्रपद प्रकरण. ६।९५।

६ चिदंशेन दृष्टत्वं सोऽयमिति प्रत्यभिज्ञा, विषयत्वं च अचिदंशेन।
ज्ञानसुखादिरूपेण परिणामित्वम्। स आत्मा अहं प्रत्ययेनैव वेद्यः॥ काश्मीरक सदानन्द–अद्वैत ब्रह्मसिद्धि।

७ प्रकरण–पञ्चिका. पृ० १४४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव और ब्रह्मकी एकताके वे पूर्ण समर्थक हैं। शंकराचार्यका कथन है कि प्रमाण आदि सकल व्यवहारोंका आश्रय आत्मा ही है। अतः इन व्यवहारोंसे पहले ही उस आत्माकी सिद्धि है। आत्माका निराकरण नहीं हो सकता। निराकरण होता है आगन्तुक वस्तुका, स्वभावका नहीं।[1] मनुष्य, शरीर-आत्माके संयोगसे बना हुआ जान पडता है। परंतु जिस शरीरको हम प्रत्यक्ष देखते हैं, वह अन्यान्य भौतिक विषयोंकी तरह मायाकी सृष्टि है। इस बातका ज्ञान हो जानेपर आत्मा और ब्रह्ममें कुछ अन्तर नहीं है। 'तत्त्वमसि' वाक्यका अर्थ है कि जीवात्मा ब्रह्मसे अभिन्न है अर्थात् दोनोंमें अभेद-सम्बन्ध है। 'त्वं'से जीवका अधिष्ठानरूप शुद्ध चैतन्य और 'तत्'से परोक्ष तत्त्वका अधिष्ठान शुद्ध चैतन्य समझना चाहिये। इसी तादात्म्यका ज्ञान करना 'तत्त्वमसि' वाक्यका तात्पर्य है। अद्वैत मतानुसार जीवका कर्तृत्व नैमित्तिक है।

रामानुजके विशिष्टाद्वैतके अनुसार—तीन तत्त्व होते हैं : चित्, अचित् तथा ईश्वर। उपनिषदोंमें वर्णित ईश्वर और जीवकी एकता अभेद सूचक एकता नहीं है। ब्रह्म, चित् (जीव) अचित् (जड़) दोनों तत्त्वोंसे युक्त है अतः वह सगुण है, निर्गुण नहीं। चित् और अचित् अंश एकदूसरेसे भिन्न हैं, तथापि उन दोनों अंशोंसे विशिष्ट होते हुए भी ब्रह्म एक है।[2] ब्रह्ममें ये दोनों अंश (तत्त्व) अपनी बीजावस्थामें निहित रहते हैं। प्रलयावस्थामें जीवों तथा भौतिक पदार्थोंका नाश हो जाता है तब भी ब्रह्म, शुद्ध चित् (शरीररहित जीव) और अव्यक्त अचित्(निर्विषयक-भूत-तत्त्व)से युक्त रहता है। इसे कारण-ब्रह्म कहते हैं। जब सृष्टि होती है तब ब्रह्म शरीरधारी जीव तथा भौतिक पदार्थोंके रूपमें अभिव्यक्त होता है यह कार्य-ब्रह्म है। ब्रह्म अनन्त गुणोंका भंडार है। यह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् है। शांकर मतमें ब्रह्म ही मायोपाधिसे ईश्वर और अविद्योपाधिसे जीव कहलाता है, परन्तु जड़ जगत प्रातिभासिक (मिथ्या) ही है। अतः एक ही तत्त्व है। रामानुजके अनुसार ब्रह्म ही ईश्वर है, उसके शरीरभूत जीव और जगत् उससे भिन्न हैं तथा नित्य हैं। अतः पदार्थ तीन है, एक नहीं। जीव अणुपरिमाण हैं किन्तु अनन्त हैं।[3] वे एकदूसरेसे सर्वथा पृथक हैं।

उपनिषद् और गीताके अनुसार—आत्मा नित्य है, न कभी वह मरता है और दोषोंको प्राप्त करता है। आत्मा शरीरसे विलक्षण,[4] मनसे भिन्न, विभु[5] और अपरिणामी है।[6] वह वाणी द्वारा अगम्य है।[7] उसका विस्तृत स्वरूप नेति-नेतिके द्वारा बताया है।[8] उपनिषदोंने दो प्रकारके वाक्योंका प्रयोग किया है। एक निर्विशेष लिङ्ग और दूसरा सविशेष लिङ्ग। सविशेष लिङ्ग श्रुतियाँ, सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध आदि है। निर्विशेष श्रुतियाँ 'वह न स्थूल है,' न अणु है, न क्षुद्र है, न विशाल है आदि हैं।[9]

---

१ आत्मा तु प्रमाणादिव्यवहाराश्रयत्वात् प्रागेव प्रमाणादिव्यवहारात् सिध्यति। न चेदृशस्य निराकरणं संभवति, आगन्तुकं हि निराक्रियते न स्वरूपम्.....। शां० भा० २।३।७।

२ वस्त्वन्तरविशिष्टस्यैव अद्वितीयत्वं श्रुत्यभिप्रायः। सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टस्य ब्रह्मणः तदानीं सिद्धत्वात् विशिष्टस्यैव अद्वितीयत्वं सिद्धम्। —वेदान्ततत्त्वसार।

३ बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते। श्वे० ५–९।

४ न हन्यते हन्यमाने शरीरे.....कठ. उप. १–२। १५।१८

५ ईशावास्यमिदं सर्वं। यत् किञ्च जगत्यां जगत्—ईशा० उप०।

६ अविकार्योऽयमुच्यते.....गी० २–२५।

७ यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह—तैत्त० उप० २।४।

८ स एष नेति नेति.....बृह० उप० ४।५।१५।

९ सन्ति उभयलिङ्गाः श्रुतयो ब्रह्मविषयाः। सर्वकर्मेत्याद्याः सविशेषलिङ्गाः, अस्थूलमनणु इत्येवमाद्याश्च निर्विशेषलिङ्गाः; —शाङ्कर भाष्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शकके अनुसार—आत्मा जड़से भिन्न और 'चैतन्य स्वरूप' है। सांख्ययोगमें जिसे 'पुरुष' कहा गया है, बौद्ध जिसे 'विज्ञानप्रवाह' कहते हैं, चार्वाक जिसे 'चैतन्य विशिष्ट देह' मानते हैं, और न्याय-वैशेषिक तथा वेदान्तमतसे जो आत्मा है, वह जैनदर्शनकी दृष्टिसे जीव है। तो भी जैनदर्शनकी आत्मविषयक विचारधारा अन्य दर्शनों से स्वतंत्र है।

'द्रव्यसंग्रह और पञ्चास्तिकायमें जीवकी व्याख्या इसप्रकार है : 'जीव उपयोगमय, अमूर्त, कर्ता, स्वदेहपरिमाण, भोक्ता, संसारस्थ, सिद्ध और स्वभावतः उर्ध्वगतिवाला है।'[1] 'जीव अस्तित्ववान्, चेतन, उपयोगविशिष्ट, प्रभु, कर्ता, भोक्ता, देहमात्र अमूर्त और कर्मसंयुक्त है।'[2]

श्री वादिदेवसूरिजीने भी 'प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार'में संसारी आत्माका जो स्वरूप बतलाया है उसमें जैनदर्शनसम्मत आत्माका पूर्णरूप आ जाता है—जैसे 'प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध[3], चैतन्यस्वरूप, परिणामी, कर्ता, साक्षाद्भोक्ता, स्व-देहपरिमाण, प्रत्येक शरीरमें भिन्न और पौद्गलिक कर्मोंसे युक्त आत्मा है।'[4]

आत्मविषयक इस लक्षणपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि जैनदर्शनानुसार जड़से भिन्न जो जीव है वह प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध वास्तविक पदार्थ है।

आचार्यश्रीने इस सूत्रमें आत्माको जड़से भिन्न और 'चैतन्यस्वरूप' कहा है। चैतन्य आत्माका मुख्य गुण और उसका स्वाभाविक स्वरूप है। आत्मा 'ज्ञानमय' होनेके कारण चार्वाक, बौद्ध, वैशेषिक इस विशेषणसे भिन्न हो जाते हैं।

चार्वाक जड़से भिन्न पदार्थका अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करते। जैनोंसे बौद्ध दार्शनिक इस बातसे सहमत हैं कि चैतन्य जड़पदार्थका विकार नहीं है। किन्तु वे आत्मानामक एक सत् पदार्थके अस्तित्वको नहीं स्वीकारते, केवल विज्ञान-प्रवाहको मानते हैं। उनका कथन है कि प्रतिक्षण उदय और लय होनेवाले इन विज्ञान-प्रवाहके मूलमें कोई स्थायी सत् पदार्थ नहीं है। वैशेषिक चैतन्यको, आत्मासे भिन्न, देह-इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होनेवाला आगन्तुक धर्म मानते हैं।

प्रतिसमय अन्यान्य पर्यायोंमें गमन करनेके कारण आत्मा 'परिणामी' है। जैसे सोनेके मुकुट, कुण्डल आदि बनते हैं, तब भी वह सोना ही रहता है, ठीक उसी प्रकार चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए जीवकी पर्यायें बदलती है, तो भी जीवद्रव्य वैसे ही रहता है।

'आत्माका 'परिणामी' विशेषण होनेके कारण न्याय-वैशेषिक, सांख्य आदि भिन्न हो जाते हैं, क्योंकि वे आत्माको अपरिणामी कूटस्थनित्य मानते हैं।

आत्मा कर्ता तथा साक्षाद्भोक्ता भी है। जैसे कर्मकार कार्य करता है और उसका फल भोगता है, वैसे ही संसारी आत्मा अपनी सत्-असत् प्रवृत्तियोंके द्वारा शुभाशुभ कर्मोंका स्वयं संचय करती है और उसका फल साक्षात् भोगती है।

परिणामी, कर्ता और साक्षाद्भोक्ता विशेषणों के द्वारा सांख्य अलग हो जाते हैं। कारण, वे प्रकृति-को कर्ता मानते हैं और पुरुषको कर्तृत्वशक्तिरहित, परिणामरहित, आरोपित भोक्ता मानते हैं।

---

१ जीवो उवओगमओ अमुत्तो कत्ता सदेहपरिमाणो। भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।—द्रव्य० सं० गा० २।

२ जीवोत्ति हवदि चेदा उवओग विसेसिदो पहू कत्ता। भोत्ता च देहमत्तो ण हि मूत्तो कम्मसंजुत्तो—पञ्चास्तिकाय।

३ प्रमाता प्रत्यक्षादि प्रसिद्ध आत्मा।—प्रमाण. न० तत्त्वा० सू० ७।५५।

४ चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्ता साक्षाद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमिति—प्रमाणनय-तत्त्वालोकालङ्कार सू० ७।५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा 'स्व-देह परिणाम' है कारण उसका संकोच और विस्तार कार्मणशरीर सापेक्ष होता है। कर्मयुक्त दशामें जीव शरीरकी मर्यादामें बन्धे हुए होते हैं, इसलिये उनका परिणाम स्वतंत्र नहीं होता। जो आत्मा हाथीके शरीरमें रहती है वह कुंथुके शरीरमें भी रह सकती है क्योंकि उसमें संकोच-विस्तारकी शक्ति है।

आत्माका 'स्व-देह परिणामी' विशेषण होनेके कारण न्याय-वैशेषिक, अद्वैतवेदान्ती और सांख्य विभिन्न हो जाते हैं। कारण, वे आत्माको सर्वव्यापक मानते हैं।

आत्माका एक विशेषण है 'प्रतिक्षेत्रे विभिन्न' अर्थात् प्रत्येक शरीरमें स्वतन्त्र है। यह जैनदर्शनकी मान्यता सांख्य, नैयायिक और विशिष्टाद्वैतवादीके अनुकूल है, तो भी अद्वैतवादी भिन्न हो जाते हैं। कारण, उनके मतानुसार स्वभावतः जीव एक है, परन्तु देहादि उपाधियों के कारण नाना प्रतीत होता है।

जैनमतानुसार जीव 'पौद्गलिक अदृष्टवान्' अर्थात् कर्मसंयुक्त है। जैसे सोना और मिट्टीका संयोग अनादि है, वैसे ही जीव और कर्मका संयोग भी अनादि है। जैसे खाया हुआ भोजन अपने आप सप्त धातुके रूपमें परिणत होता है, वैसे ही जीव द्वारा ग्रहण किये हुए कर्मयोग्य पुद्गल अपने आप कर्मरूपमें परिणत हो जाते हैं।

आत्माका 'पौद्गलिक अदृष्टवान्' विशेषण होनेके कारण न्याय-वैशेषिक और वेदान्ती भिन्न हो जाते हैं। कारण, चार्वाक अदृष्ट अर्थात् कर्मसत्ता को मानते ही नहीं। न्याय वैशेषिक अदृष्ट(धर्माधर्म)को आत्माका विशेषगुण मानते हैं और वेदान्ती उसे मायारूप मानकर उसकी सत्ताको ही नही स्वीकारते।

संक्षेपमें, जैनदर्शनके अनुसार आत्मा—चैतन्यस्वरूप, विभिन्न अवस्थाओंमें परिणत होनेपर भी नित्य (कूटस्थनित्य नहीं), शुभाशुभ कर्मोंका कर्ता तथा उसके फलका भोक्ता, स्व-देह-परिणाम, न अणु, न विभु किन्तु मध्यम परिमाणका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org